ISSN: 0973-0583

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में नारी सशक्तिकरण : एक अध्ययन

श्रेया सिंह
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, साईं नाथ विश्वविद्यालय, राँची
डॉ0 ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह
शोध निदेशक, साईं नाथ विश्वविद्यालय, राँची

शोध सार

प्रकृति ने पुरुष व महिला को एक दूसरे का पूरक बनाया है। दोनों के पारस्परिक सहयोग से ही मानवता सुरक्षित व संरक्षित रह सकती है। फिर भी उसे अन्या, अबला, असूर्यम्पश्या तथा द्वितीया आदि नामों से अविहित क्यों किया जाता है? क्या नारी इसी योग्य है? तो इसका उत्तर यह है कि पितृसत्तात्मक समाज में नारी को इस स्थिति में पहुँचने वाला है पुरुष, जिसके द्वारा नारी को जन्म के साथ घुट्टी में ही उसे यह भुलावा दिया गया कि वह पीड़िता नही हैं, बेटी, बहन, पत्नी और माँ है। इन्हीं पदवियों में उनका स्त्री रूप गुम हो जाता है। वह पुरुषों की उपनिवेश हो गए। पुरुष अपने हित के अनुरूप उसका उपयोग करता रहा। धीरे-धीरे पुरुष प्रधान समाज ने उन्हें सम्पत्ति से बेदखल कर उनकी सामाजिक, राजनैतिक सहभागिता को समाप्त कर दिया।

मुख्य शब्द : अमानवीय, अत्याचारों, समाज, रूढ़ियों, कुरीतियाँ, विद्रोह,पितृसत्तात्मक ।

सशक्तिकरण में महिलाओं को उनके अधिकार उनकी अस्मिता और स्वतन्त्रता व मुक्ति के मार्ग का ज्ञान तथा जागरूक करने हेतु एक गम्भीर चिंतन व स्त्री विमर्श की आवश्यकता है। प्रश्न यह उठता है कि स्त्री-विमर्श क्या है? डॉ० करूणा शर्मा के शब्दों में-''स्त्री विमर्श अर्थात् साहित्य में स्त्री जीवन के छुए अनछुए सभी पहलुओं जैसे-उसके शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, मनोवैज्ञानिक आदि सभी पक्षों की समस्याओं को विचारार्थ उठाना और उनके निवारणार्थ मूल्यों का स्त्री संदर्भ में पुर्नमूल्यांकन करना, भारतीय सांस्कृतिक परिवेश को ध्यान में रखकर स्त्री के सर्वांगीण विकास के लिए मार्ग प्रसस्त करना, साथ ही स्त्री पुरुष दोनों को प्रतिद्वन्द्वी रूप में नहीं, सहयोगी रूप में स्वीकार्य ही स्त्री-विमर्श है।''[1] इसी प्रकार के विमर्श से ही महिला को आत्मनिर्भर, समर्थ तथा सशक्त बनाया जा सकता है। स्त्री समस्याओं पर गहन चिंतन कर लेखक, साहित्यकार, बुद्धिजीवी वर्ग सदियों से पीड़ित शोषित स्त्री को उसका अधिकार दिलाने हेतु प्रेरित कर रहे हैं। महिलाओं के सशक्तिकरण में निम्नलिखित बिन्दु आधार का काम करते हैं-

अमानवीय अत्याचारों के विरूद्ध विद्रोह-

स्त्री और पुरुष के मध्य वर्षों से शक्ति का असंतुलन रहा है और इस विषय असंतुलन को भारतीय संस्कृति में जाति, धर्म, परम्परा या प्राकृतिक या दैवीय नियमों के नाम पर उचित भी ठहराया जाता रहा है और इन्हीं स्वयं द्वारा बनाये गय नियमों की आड़ में पुरुष अपने पुरुषत्व के नाम पर खुद को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए स्त्रियों पर तरह-तरह के अत्याचार करता रहा है। कुत्सित विचारों के धनी पुरुष अहंवादी लोगों ने विभिन्न तर्कों के माध्यम से स्त्री को शोषण के योग्य सिद्ध किया है जिसका वर्णन पूर्व के अध्यायों में विस्तार से किया गया है। पुरुष को स्वयं को श्रेष्ठ मानने की मानसिकता सामाजिक परिवेश की देन है। भारत में समाज से तात्पर्य मात्र पुरुष वर्ग से रहा है। अर्थात् यह पुरुषों की ही देन है। जब से स्त्रियाँ आत्मबोध के प्रति सचेत हुए, तब से पुरुष प्रधान समाज के इस दृष्टिकोण को समझने लगी और इसके प्रति आक्रोश व्यक्त करने लगी।

1. क्या समाज में स्त्री जन्म इतना विध्वंशकारी है,[1] कि उसे जहर देकर या भ्रूण हत्या के द्वारा उसे मार दिया जाए।

2. उसे भी पुरुष की भाँति ही प्राणी न समझ परिवार की इज्जत, खानदान की पता, मान, मर्यादा जैसे नश्वर प्रतीकों के रूप में क्यों माना जाता है?

3. सिर्फ योनि की भिन्नता के अतिरिक्त उसमें शरीर, बुद्धि शक्ति में भिन्नता कहाँ और कैसे हो?

4. अगर पुरुष देह अश्लील नहीं है तो स्त्री देह अश्लील क्यों हैं?

5. पति अगर काम भावना की पूर्ति करने में अक्षम है तो शरीर के नतेश्वर की उलझन को शांत करने का समाधान क्या और कैसे हो?

6. जप, तप, व्रत उपवास पूजा जैसे शरीर को कष्ट पहुँचाने वाले अनुष्ठान को जबरन स्त्री को ही वहन करने को क्यों विवश किया जाय?

7. बलात्कार जैसा पाश्विक कुकृत्य क्यों हो? अगर ऐसा होता भी है तो इसे शारीरिक दुर्घटना मान उसके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार न कर उसे अवहेलित व हेय क्यों समझा जाता है?

8. समाज में पुरुष की भाँति ही स्त्री भी अपने जीवन को सहज और संतुलित करने हेतु इच्छित पुरुष का चुनाव करने में स्वतंत्र क्यों नहीं है?

9. मारपीट सहन करना स्त्रियों की ही नियति क्यों है? आदि ज्वलंत प्रश्नों को मन में ही कुलबुलाता न छोड़ कृष्णा सोबती के चरित्र मुखरता से इनका विरोध और समाधान दोनों ही प्राप्त करना चाहती है।

''मामियों की तीखी नजरें भी चोट करने से न चूकती मैं खुश होती तो कहती-निठल्ली, बैठी है, कुछ काम धंधे लगा। चक्की चलाती तो कहती चरखा रख। चरखा रखती तो कहती भांड़े मल। भांड़े मलती तो कहती छाज ले छाँट कर।''[2] इस प्रकार घर में कभी न खत्म होने वाले कामों में पाशो को लगाया जाता है पर उसका युवा शरीर मन के सामयिक उछाहों पर नियंत्रण करने में असमर्थ हो उठती है और तब शुरू होता है उसके साथ जघन्य क्रूरताओं का एक लम्बा दौर जिसका अंत उसके जीवन के अंतिम पड़ाव तक नहीं हो पाता-

''फतेह अली के घर गई थी?''

सिर हिलाया-नहीं।

''गई थी मर गई, करीम से मिलने?''

नहीं मामू नहीं''।[3]

'तेरी ऐसी करतूतें'। तड़पी, रोयी-धोयी, पर मामू तो थमें नहीं। लहू बहता देख ऐसी डरी कि घिग्घी बँधा गए। मामू का पैर पकड़ सिर पटकने लगी-''और न मारो, मैंने कुछ नहीं किया। नानी ने आ अलग किया और सिर पर टहांका दे बोली-''किन पापों का फल इस जन्म में मुझे मिलना था। बहू इसे मौहरा दो मौहरा, ऐसी सोए कि जागे न।''[4]

पाशो के मामुओं ने उस रात उसे जान से मार देने की जुगत की तो 'पाशो' इस जघन्य क्रूरता के विरूद्ध संघर्ष करती है- ''दिल में धाँस पड़ी। प्रभाती जोड़ मेले के बहाने मेरी मौत आए हैं। ऐसे में नानी को पता चलता है तो उन्होंने रात में ही पाशो को शेखों की हवेली में भाग जाने के लिए घर से निकाल देती है। परिवार की अन्य स्त्री को माँ बनते देख उसमें भी मातृत्व की इच्छा प्रबल होती है और बांझ कहलवाने के विरूद्ध अपने पति की अक्षमता पर वह खुले आम आरोप लगाती है जिसके कारण उसका जेठ उसे 'बुरी स्त्री' और 'अश्लील स्त्री' बताया है।

'मित्रो' इन सामाजिक पारिवारिक अत्याचारों का खुलकर विरोध करती है। वह जीवन को खुशियों का ऐसा बुलबुल समझती है, जो न जाने किस घड़ी समाप्त हो जाय। छन छन छीझती देह से जितना रस हो सके बटोर लेना चाहती है। उसका मानना है कि सारी जीवंतता को समाज की रूढ़ियाँ गली लकड़ी सी सुलगती रहने को विवश कर देती है। मित्रो उन रूढ़ी मान्यताओं के खिलाफ संघर्ष करती है जो उस पर अत्याचार करने को प्रेरित करती है।[5]

'रत्ती को पता है कि उसका आत्मभिमान व आत्मसम्मान दोनों ही छिन्न भिन्न हो गये हैं और वह अपने पर हुए अमानवीय अनाचार के खिलाफ संघर्ष कर अपने खोये सम्मान को वापस पाना चाहती है। वह इस जघन्य क्रूरतम अनाचार के खिलाफ लड़ाई छेड़ देती है। यह काम इतना आसन नहीं था क्योंकि समय द्वारा निर्मित नैतिक मानदण्डों के हस्तक्षेप को पूरी तरह से नकारना बहुत ही साहस का काम है। जीवन (एरॉस) से मृत्यु (थेनेरॉस) को पछाड़ना था। काम संबंधी जीवन और मृत्यु एरॉस और थेनेरॉस की अभिव्यक्ति देते हुए 'देवेन्द्र

इस्सर'-रत्ती पर हुए इस क्रूरता और उसके असर को इस प्रकार चित्रित करते हैं- ''सूरजमुखी अंधेरे के' की मूल समस्या 'एरॉस और थेनेरॉस' के द्वन्द्व की है। एरॉस सूर्योन्मुख है जो प्रकार और ऊष्मा लिए हुए हैं। थेनेरॉस मृत्युन्मुख है- अंधकारमय और ठण्डा। बलात्कार यानी एरॉ का बलपूर्वक हिंसात्मक हनन रत्ती (सूरजमुखी) को अंधेरे की अंतहीन गुफा में फेंक देता है उसे ठण्डी औरत बना देता है और अन्ततः महज बर्फ की शिला, औरत नहीं। यही से शुरू होती है-'एरॉस' और 'थेनेरॉस' की लड़ाई-रत्ती के भीतर और रत्ती के बाहर।''[6]

इस मानवीय अनाचार के विरूद्ध लड़ाई लड़ने के लिए रत्ती को अपने समाजीकरण की पूरी स्थिति से अलग हो जाना पड़ता है। समाज के लोगों द्वारा उस पर किये जाने वाले व्यंग्यों की परवाह न करती हुई वह अपने बीते कल से विमुख होने के लिए बार-बार संघर्ष करती है-''रत्ती का समूचा अंतरंग व्यवहार सायास है। सहज नहीं इतना है कि हर कदम, कभी देह, कभी मन, कभी अपनी से, अपने अतीत से मुक्ति पा लेने की छटपटाहट, कभी दरारों की अनझपकी आँखों तले बार-बार वह अकेली लड़की संघर्ष करती है-हथियार डालती है फिर लड़ती है।''[7]

विधवा होने में भी स्त्री का कोई दोष नहीं होता लेकिन इसकी सारी जिम्मेदारी स्त्री पर थोपी जाती है। इस तरह शारीरिक उलझनों को सहते हुए उसे अपनी इच्छाओं आकांक्षाओं का दमन कर जिंदा लाश की तरह रहना होता है। ऐसे में जो परिवार व समाज उसे लक्ष्मी कहता था उसकी दृष्टि क्षण भर में बदल जाती है, वही उसे कुलक्षिणी, भक्षिणी आदि नाम देते हैं। इस प्रकार के अमानवीय अत्याचार स्त्रियों पर वर्षो से होते आये है। पर कृष्णाजी के पात्र इस अत्याचार का मुखर विरोध करते हैं। 'दिलोदानिश' की 'छुन्ना बीबी' विधवा हो जाती है तो उन्हें ससुराल और मायके दोनों ही स्थानों पर घोर मानसिक यंत्रणा से गुजरना पड़ता है। युवा शरीर और यौन आकांक्षाएँ उसके शरीर को उलझनों से भर उसे दोहरे दर्द को सहने के लिए विवश करती है, उसे आये दिन सामाजिक अत्याचार से दो चार होना पड़ता है उसे गालियाँ व कटूक्तियाँ ही हर कदम सुनना पड़ता है। अपनी अंतरात्मा पर असंख्य घावों का दर्द लिए छुन्ना अपने शरीर को देवर की कुत्सित नजरों से बचाकर कही छुप जाना चाहती है। उसके 'विधवा' संबोधन बहुत अखरता है। जो उसे जिल्लत भरा जीवन जीने के लिए विवश करता है। ससुराल और मायके दोनों जगह के लोगों की जलती नजरें उसके हिस्से की जमीन और उसकी संदूकची पर ही लगी रहती है। 'छुन्ना' बेचारी अनचाहे मेहमान की तरह संघर्ष करती है। इस सामाजिक परम्परा को तोड़ वह मन की पीड़ाओं से थक हारकर 'भुवन' से विवाह का निर्णय लेती है।

समाज में व्याप्त रूढ़ियों व कुरीतियों के प्रति विद्रोह

उस समाज में स्त्री पुरुष के मध्य आपसी संबंध कैसे है? जहाँ तक भारतीय समाज की नैतिकता का ज्ञान करने की बात है तो कह सकते हैं कि इनकी मानसिकता थोड़ी संकीर्ण है। इस संदर्भ मे कृष्णा सोबती का कथन इस प्रकार है-''क्या हम याद करना पसंद करेंगे कि भारतीय मानसिकता अपने समूचे आदर्शो, तामझाम के साथ बराबर एक खास तरह की संकीर्णता का शिकार रही है। ऐसे में कोई भी समूह या भीड़ धर्म, वर्ण और जाति पति की सीमाओं को लांघ एक बड़ी दुनिया में जीना चाहे, जीकर दिखाए तो उसका हमें अभिनन्दन करना है।'[8]

''बनवारी कहता है, मित्रों, तेरी देह क्या निरा शीरा है शीरा! उस नासा होने से कहती हूँ- अरे इसी शीरे में तेरी जान को डंक मारते सर्पों की फौजें पलती हैं।''[9] अब तक की भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्री की देह का नियंत्रण स्त्री की हाथों में नहीं बल्कि पुरुष के हाथों में रहता आया है। इसके लिए तो- ''देह, स्त्री की एकमात्र पहचान के रूप में उसका गुण भी है और गाली भी। जब तक वह पुरुष की इच्छा और वासना के नियंत्रण में है, वह सौंदर्य है, उद्दीपन है और ऐसा अवयव-समूह है जो वांछनीय है। अगर उससे निरपेक्ष और उसके नियंत्रण से बाहर है तो भर्त्सनीय और दण्डनीय है। हमारी भाषा की सारी अश्लील गालियाँ या तो पुरुष की असमर्थता, अक्षमता की घोषणाएँ हैं या फिर काम दीवान स्त्री के द्वारा अपने शरीर के दुरूपयोग की सामाजिक भर्त्सनाएँ या वासना के आवेश में नैतिक मर्यादाओं उल्लंघनों पर लांछन-बाप, भाई, या बेटों के साथ संभोग सबसे बड़ी गाली है। या फिर अपने पति से ही संतुष्ट न रहकर अनेक पुरुषों से वासना तुष्टि-अजीब विरोधाभास है। पुरुष औरत को सिर्फ शरीर या उसके कुछ अंगों को ही उसके सम्पूर्ण पहचान के रूप में देखने की जिद में रहना चाहता है, लेकिन जब औरत स्वयं को अपने इस रूप में देखने या मानने लगती है तो बौखला उठता है-स्त्री शरीर रहे लेकिन अपने आपको

सिर्फ इतना शरीर माने जितनी की उसे (पुरुष को) जरूरत है। उससे अधिक मानना उसकी 'उच्छृंखलता' और अमर्यादा है।'[10]

उपर्युक्त बातों के परिप्रेक्ष्य में 'अमर्यादित, और उच्छृंखल' मित्रों की सारी कसमकस पुरुष प्रधान समाज की उन रूढ़ियों को तोड़ फेंकने की है जिसमें स्त्री मात्र एक देह है, और एक ऐसी देह जिसे पुरुष वस्तु की भांति अपनी मर्जी से इस्तेमाल करके फिर किनारे फेंक देता है। जब प्राचीन मूल्य नकारे जाते है और उनका स्थान नवीन मूल्य ग्रहण करने लगते हैं तो रूढ़िग्रस्त समाज घबरा जाता है। इसी कारण मित्रों की बात सुनकर लोगों को आश्चर्य होता है। इस रूढ़ियों को खण्डित करती मित्रों जैसी स्वच्छन्द स्त्री पात्र के विषय में आलोचकों का कहना है- ''मित्रो हिन्दी की अकेली ऐसी कथा नारी लगती है जो सदियों से नारी पर लादे गये संस्कारों-संबंधों, सुन्दर सुन्दर उपमाओं को ललकारती मुंह चिढ़ाती और उन्हें झुठलाती हुई अपनी मूलभूत जरूरत और जबान के साथ हमारे सामने आ खड़ी हुई हो, छिन्नमस्ता काली की तरह माना हम उसके तेज को बर्दाश्त नही कर पाते।''[11]

ऐसी घटना का शिकार स्त्री घोर निराशा व कुण्ठा का शिकार हो जाती है। समाज के लोग उसके साथ सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करने के बजाय उसे ही इस कुकृत्य का दोषी मानते हैं-''जिस स्त्री के साथ बलात्कार हुआ हो, उसे शंका की निगाह से देखा जाता है। माना जाता है कि बलात्कार को संभव बनाने में उसकी भी कुछ भूमिका रही होगी। कानूनी हल्कों का ये दृष्टांत मशहूर है कि जिस तरह कोई सूई लगातार हिलाई जाती रहे, तो उसमें धागा नहीं डाला जा सकता, उसी तरह एक असहमत तथा संघर्षशील स्त्री से जबर्दस्ती संभोग नहीं किया जा सकता।''[12]

'दिलोदानिश' में महक 'रखैल' शब्द से अपमानित होने पर भी कृपानारायण के प्रति जितनी समर्पिता है उतनी उनकी पत्नी महक भी नहीं। यहाँ लेखिका समाज व्यवस्था की रूढ़ियों की ओर संकेत किया है जिसमें स्त्रियों का अनादर होता है। विधवा विवाह का संकेत उपन्यास में लेखिका ने किया है 'ऐ लड़की' की बूढ़ी अम्मा को यह दु:ख हमेशा सताता है- कि इस प्रकार कृष्णा सोबती ने समाज में व्याप्त रूढ़ियों और कुरीतियों के प्रति विद्रोह करने वाले पात्रों को पैदा किया है। पर यह विद्रोह एक नवीन प्रकार का है। इनमें परम्परागत रूढ़ नैतिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह और सनातन मानवीय मूल्यों के प्रति अगाध आस्था को दर्शाता है। हिन्दी साहित्य की अन्य नारियाँ अनथक संघर्ष के उपरांत उपलब्धि के नाम पर रिक्त के बोध से ग्रस्त हो जाती हैं। लेकिन कृष्णा सोबती की स्त्री अधिकारी के नाम पर कोई स्थूल सुविधा पाकर भी असीम संतोष की अनुभूति करती है। वह आत्मसम्मान बनाये रखती है। इनके उपन्यासों में जड़ मान्यताओं व रूढ़ियों का खण्डन किया गया है। स्त्री इन रूढ़ियों से बाहर निकल अपने अस्तित्व और अस्मिता की पहचान कर मुक्त और स्वतन्त्र जीवन जीती है। इस प्रकार स्त्री की चैतन्यता व जागरूकता उन्हें सशक्त बनाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. ऐ लड़की-कृष्णा सोबती-राजकमल प्रकाशन दि0-1991-पृ0-100
2. स्त्री अस्मिता और कृष्णा सोबती-डॉ० रूपा सिंह -पृ0-142
3. मित्रो मरजानी-कृष्णा सोबती-पृ०-12
4. सोबती एक सोहबत-राजकमल प्रकाशन, दिल्ली -1989, पृ0-391
5. सूरजमुखी अंधेरे के-कृष्णा सोबती-राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-1989, पृ०-68
6. स्त्री अस्मिता और कृष्णा सोबती-डॉ० रूपा सिंह -पृ0-146
7. सोबती एक सोहबत-कृष्णा सोबती-राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-1989, पृ0-393
8. सोबती एक सोहबत-कृष्णा सोबती-राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-1989, पृ0-405
9. मित्रो मरजानी- कृष्णा सोबती-राजकमल पेपर बैक्स -दिल्ली-1989, पृ0-17
10. स्त्री अस्मिता और कृष्णा सोबती-डॉ0 रूपा सिंह -पृ0-159
11. स्त्री अस्मिता और कृष्णा सोबती-डॉ0 रूपा सिंह -पृ0-160
12. राजकिशोर-स्त्री के लिए जगह (संपादित) वाणी प्रकाशन-दिल्ली-1994, पृ0-14-15

❖❖❖